अध्याय-१

लोक साहित्य का परिचय

साहित्य शब्द का अर्थ :

साहित्य से तात्पर्य वाङ्मय से है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में : 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य हैं।'[१] 'सहित' शब्द का अर्थ है, जिससे सबका हित हो। हित से युक्त भावात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है। अंग्रेजी में साहित्य का पर्याय 'लिटरेचर' है। साहित्य शब्द विशाल अर्थ का परिचायक हो गया है।

राजशेखर ने साहित्य के संदर्भ में लिखा है : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'[२] अर्थात् शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोग वाली विधा साहित्य है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने साहित्य की व्याख्या इस प्रकार दी है :

'साहित्य शब्द ऐसे साहित्य के मिलने का एक भाव देखा जाता है, वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रंथ-ग्रंथ का मिलन नहीं है, किन्तु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यंत अंतः- करण का मिलन भी है। जो कि साहित्य के अतिरिक्त अन्य से संभव नहीं है।'[३]

इसी सन्दर्भ में पाश्चात्य समीक्षक हेनरी हडसन ने लिखा है कि 'साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है। गहराई से देखा जाए, तो हेनरी की इस परिभाषा का लोक साहित्य की ओर अधिक झुकाव है।'[४]

लोक साहित्य का परिचय :

लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही प्राचीन मानी जा सकती हैं, जितनी कि मनुष्य जाति की है। लोक साहित्य जनता की संपत्ति होने के कारण लोक संस्कृति का दर्पण है।

जन–संस्कृति का जैसा सच्चा तथा सजीव चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। सरलता, स्वाभाविकता और सरसता के कारण यह अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। साधारण जनता का गाना, हँसना, खेलना, रोना जिन शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता है, वह सब कुछ लोक साहित्य में आता है। किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य एवं सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन लोक साहित्य के द्वारा सुलभ हो जाता है, लेकिन लोक साहित्य के बारे में प्रश्न उठता है कि लोक और साहित्य दो शब्दों को मिलाकर लोक साहित्य शब्द बनता है, इसलिए सबसे पहले 'लोक' और 'साहित्य' शब्द को समझना आवश्यक हैं।

लोक शब्द का अर्थ :

लोक साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से हो रहा है। यह शब्द संस्कृत की 'लोक्' धातु में – 'ध्वन' प्रत्यय जोड़ने से निर्मित हुआ। इस धातु का अर्थ है 'देखना'। इसका लट् लकार में अन्य पुरुष एकवचन रूप 'लोकते' होता है। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखनेवाला'। इसलिए लोक शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण जन–समुदाय से है, जो किसी देश में निवास करता हैं।[५]

'लोक शब्द की प्राचीनता के विषय में भी कोई संदेह नहीं है, क्योंकि साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है, इसी में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता हैं।[६] ऋग्वेद के ही सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।[७] इसी प्रकार पुराणों में भी 'लोक' शब्द स्थान के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त है। 'लोक' शब्द से हिन्दी में लोग शब्द बना है, जिसका अर्थ है, (१) स्थान (२) संसार (३) प्रदेश, (४) जन या लोग (५) समाज (६) प्राणी (७) यश (८) दिशा आदि। इस प्रकार उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं। इहलोक और

परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है – पृथ्वी, अंतरिक्ष और भूलोक। पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई और फिर पीछे सात लोक मिलाकर चौदह लोक किए गए।[८]

संस्कृत साहित्य की तरह हिन्दी साहित्य में लोक शब्द के लिए लोग शब्द का प्रयोग 'सामान्य जनता' के लिये किया गया है। वास्तव में लोक शब्द हिंदी में अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का पर्याय है। जहाँ इस शब्द का प्रयोग अशिक्षित, असभ्य वर्ग के लोगों के लिए किया जाता है, चाहे वे नगरों में रहते हैं या गाँवों में। केवल ग्रामीणों के लिए ही लोक शब्द का प्रयोग स्वीकार्य नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विदेवी ने लिखा है कि 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समस्त जनता है, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि–सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता – सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं।'[९]

डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोक' पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है : 'लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है; और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।'

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भी इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है कि 'जो लोक संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं, वे लोक होते हैं।'[१०]

पूर्णिमा श्रीवास्तव ने लोक पर विचार प्रकट करते हुए कहा है : 'वास्तव में लोक का अर्थ उस जन समाज से है, जो विस्तृत रूप में इस पृथ्वी पर फैला हुआ है और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित हैं।'[११]

आधुनिक विद्वानों द्वारा 'लोक' शब्द कई अर्थो में प्रयुक्त किया गया हैं। कुछ विद्वानों ने 'लोक' को जन का पर्याय माना है, तो कुछ ने 'ग्राम' या 'नगर' की सीमित परिधि के अन्तर्गत बाँधा है। कुछ विद्वान अशिक्षित और अल्प सभ्य व्यक्तियों के वर्ग को लोक के अन्तर्गत सन्निहित करते हैं।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'लोक मानव-समाज का वह वर्ग है, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति आस्थावान है, वह आधुनिक सभ्यता एवं कृत्रिमता से दूर अपनी प्राचीन संस्कृति, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नहीं तोड़ता। वास्तव में लोक वही है, जिसमें युग की मनोवृत्तियों के कुछ न कुछ अवशेष उपलब्ध हों।'

इस प्रकार 'लोक' शब्द की व्याप्ति में नगर-गाँव आदि सब कुछ आ जाता है। इसे नगर या गाँव की सीमित परिधि के अन्तर्गत बाँधना उचित नहीं है और न ही इसे जन का पर्याय मानना भी उचित है। ग्राम या जन शब्द लोक के समक्ष संकुचित अर्थ एवं क्षेत्रवाले प्रतीत होते हैं। वर्तमान समय में विद्वानों द्वारा लोक शब्द को ग्राम के पर्याय के रूप में न मानकर विस्तृत अर्थ में स्वीकार किया गया है।

लोक शब्द की प्राचीनता के विषय में भी कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है, इसी में लोक शब्द के लिए, 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[१२] वैदिक ऋषि कहते हैं कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत के लोगों की रक्षा करता है। 'य इमे रोदसी उमे अहमिद्रमतुष्टवं। विश्वमित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जनं।'[१३] ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थ में किया गया है।

'नाभ्या आसीदेन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तन। पभ्दर्यां भूमिर्दिशः श्रोता तथा लोका अकल्प्ययन।।'

हिन्दी के भक्त कवि तुलसीदास ने लोक तथा वेद के मूल्यों को प्रेम के आधार पर समान मानते हुए लिखा हैं -

'लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती।।'[१४]

लोक साहित्य :

लोक साहित्य की व्यापकता मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित सम्पत्ति है। लोक साहित्य का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक है और कोटि-कोटि जन समुदाय तक लोक-साहित्य का प्रचार-प्रसार होता है।

लोक साहित्य एक शास्त्र है, जो अपने-अपने कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किये हुए है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है; और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। सामने आता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोकजीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन से घनिष्ठ रूप से सबन्धित है।

लोक साहित्य के गूढ़ अर्थ को सहजता से समझाने के लिए 'हिन्दी साहित्य कोश' के संपादक ने लिखा है कि 'वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपनी ही मानता है; और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है। इसी कारण जिसके किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता है, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।'[१५]

आजकाल 'लोक साहित्य' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'फोकलिटरेचर' के पर्याय के रूप में हो रहा है, जिसका सामान्य अर्थ है 'लोक का साहित्य'।

इसी लोक के पर्याय से इसके कई अर्थ निकलते हैं :

१. उस लोक का साहित्य, जो सभ्यता की सीमा से बाहर है और सभ्य समाज में जिनका स्थान नहीं है।

२. जंगली जातियों का साहित्य, यहाँ 'फोक' शब्द का तात्पर्य उन लोगों के साहित्य से है, जो आदिम परम्पराओं को सुरक्षित रखे हुए हैं।

३. लोक साहित्य ग्रामीण साहित्य है।

वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसे भले ही किसी भी व्यक्ति विशेष ने न गढ़ा हो; परंतु आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपनी ही मानता है, जिसमें लोक के युग-युगीन वाणी साधना सम्मिलित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी वजह से इसके किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलता, जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है। यह उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।

लोक साहित्य सर्वदेशीय, सर्वकालीन और सर्वसम्मत रूप में स्वीकार किया जाता है। इसकी परंपरा मिटती नहीं है, बल्कि गत्यात्मक रहती है और सदैव पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में हस्तांतरित होते हुए लोक की मौखिक अभिव्यक्ति होती है और संपूर्ण लोकजीवन का नेतृत्व करती है। लोक साहित्य में सदैव लोक भावनाओं को सम्मान दिया जाता है।

डॉ. दिनेश्वर प्रसाद ने कहा है : 'लोक और साहित्य के अभिप्रायों पर पृथक्-पृथक् विचार करने पर लोक साहित्य की जो सम्मिलित संकल्पना उभर कर सामने आती है, वह केवल यही है कि यह लोक का सामुदायिक मौखिक साहित्य हैं।'[१६]

लोक साहित्य की अवधारणा :

जन-जीवन की भावनाओं एवं विचारों के संचित कोश को ही विद्वानों द्वारा लोक साहित्य का नाम दिया गया है। जन-जन के इस सचित्र कोश को मानव द्वारा हृदय और

मस्तिष्क में सुरक्षित रखा गया है और अनेक अवसरों पर आवश्यकता के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। फलस्वरूप वह मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गया।[१७]

लोक साहित्य की युगों-युगों की लम्बी यात्रा के मध्य न जाने कितनी परम्पराएँ बनीं और मिटीं, समाज में न जाने कितने परिवर्तन हुए, मान्यताएँ बदलीं, आस्थाएँ बदलीं, विचारधाराएँ बदलीं; किन्तु लोक साहित्य के प्रति लोक-मानव की आस्था में तनिक भी कमी नहीं आई; और वह निरन्तर पल्लवित और पुष्पित होती रही। लोक साहित्य में सदैव लोक भावनाओं को सम्मान दिया गया। लोक की भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया, यही कारण है कि अलिखित और मौखिक परम्परा के होते हुए भी लोक मानव लोक साहित्य के प्रति सच्ची भावना से आस्थावान है।

'लोक साहित्य की कोई एक सुनिश्चित परिभाषा दे सकना थोड़ा कठिन है, क्योंकि लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य अलिखित और परम्परागत होता है; किन्तु आज ऐसे लोक साहित्य की कमी नहीं है, जो आज लिपिबद्ध है या बहुत दिनों से लिखित रूप में चला आ रहा है।'[१८]

अनेक विद्वानों द्वारा लोक साहित्य को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। कुछ प्रमुख विद्वानों की कतिपय परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं :

लोक साहित्य की परिभाषाएँ :

लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं -

१. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर :

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के मतानुसार : 'लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात

रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता-सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल-मिलकर ही कहता है।'[१९]

हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश में इस विषय से संबंधी विवेचन के अनुसार - 'वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है। सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते है।'[२०]

२. डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती :

डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती लिखते हैं : 'आदिम मानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोकवार्ता तथा लोक साहित्य है। हमारे विचार से लोक साहित्य लोक-समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परंपरागत मौखिक क्रम से प्राप्त वही वाणी है, जिसमें लोकमानस संग्रहीत रहता है।'[२१]

३. दिनेश्वर प्रसाद :

दिनेश्वर प्रसाद ने 'लोक साहित्य और संस्कृति' नामक पुस्तक में लोक साहित्य के लिए लिखा है कि 'लोक साहित्य का केन्द्रीय लक्षण है सामुदायिकता। वह सामुदायिकता और लोकबद्धता केवल अनुष्ठान और क्रियामूलक गीतों, शिक्षापरक कहावतों और कथाओं या मनोरंजनात्मक पहेलियों गाथाओं और कहानियों के मुख में ही नहीं दिखाई पड़ती; बल्कि किसी बात में भी लोकरचनाएँ मौन पाठकीय की अपेक्षा लोक-साहित्य की सदस्यों द्वारा या उनके बीच मुखर पाठ के विषय हैं।'[२२]

४. डॉ. सत्येन्द्र :

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्तियाँ आती हैं, जिनमें आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हैं।

परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता है और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई है। किन्तु वह लोक-मानस के सामान्य तत्त्वों से इस प्रकार युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ संबंध रहते हुए भी लोक उसे अपनी ही कृति स्वीकार करें।'[२३]

५. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय :

'सभ्यता के प्रवाहों से दूर रहनेवाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं।'[२४]

६. डॉ. सत्या गुप्ता :

'लोक साहित्य में विशेषतः जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती हैं।'[२५]

७. विद्यापति कोकिल :

'नदी के कूलों को सजाया और सँवारा जा सकता है, परन्तु समुद्र तट की सजावट कैसे की जाए, उसके कगार किसके वश के हैं। लोक साहित्य समुद्र की भाँति है। वह किसी प्रान्त में, प्रान्त की सम्पूर्ण बोलियों में, जीवन के प्रत्येक विषय पर भावों की लहरों के अनन्त बहाव में, छन्दों के अगणित शेर में, संगीत की अजस्त्र मादकता में, जिसके लेखक अविरल रूप से देश की भाषा को, संस्कृति को गाया करते हैं, गाया ही करते हैं, बिना प्रशंसा की प्रतीक्षा किए - अनाम, अगोचर और अदृष्ट।'[२६]

८. काशीनाथ उपाध्याय :

'वह साहित्य जो लोक के द्वारा लोक के लिए और लोक का अर्थात् लोक की भाषा का साहित्य हो, उसे लोक साहित्य कहा जा सकता है।'[२७]

९. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी :

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित चलित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।'[२८]

१०. डॉ. केसरीनारायण शुक्ल :

डॉ. केसरीनारायण शुक्ल का कहना है कि 'लोक साहित्य मानवता का पालना है। लेखन से पहले की मानवता की संस्कृति का अमूल्य भंडार है, जिसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कार, कर्मकांड, काव्य, नृत्य, गान आदि सभी फलते-फूलते और खेलते रहे हैं; और जो कि इन सबका समन्वित कलात्मक रूप हैं।'[२९]

११. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा :

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार : 'वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो; पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसे किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता है, जिसका प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोक का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।'[३०]

१२. डॉ. बापुराम देसाई :

'लोक साहित्य में लोक जीवन प्रतिबिम्बित होता है। लोक जीवन ही सृष्टि रूप में अभिव्यक्ति लोक साहित्य में मिलती है। कई एक व्यक्ति ऐसे साहित्य का न निर्माण कर सकता है, न विनाश ही। समस्त जीवन का प्रतिनिधित्व ही लोक साहित्य है।'[३१]

१३. देविका के आमलिपार :

लोक साहित्य के सन्दर्भ में लिखते हैं कि 'परंपरागत जीवन-यात्रा की पद्धति जिस सामाजिक आचार-विचार श्रद्धा के द्वारा अभिव्यक्त होती है, उसे लोक-साहित्य कहते हैं।'[३२]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर लोक साहित्य का एक सर्वसामान्य स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट होता है। हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य के भाव संपूर्ण मानव समाज के भाव होते हैं, मानव मात्र की स्वानुभूति अपनी माँ की गोदी में सीखी हुई भाषा में व्यक्त होती है, तब उसकी अभिव्यक्ति लोक साहित्य का रूप धारण कर लेती है।

लोक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसका सम्बन्ध किसी क्षेत्र विशेष की धरती, मिट्टी और जन जीवन से होता है। लोक साहित्य में हमें लोक जीवन की सच्ची झलक मिलती है। इसे गृहस्थ का तथा ग्रामीण जीवन का निर्मल दर्पण कहा जाता है। लोक साहित्य किसी भी समाज अथवा लोक-व्यवहार का सजीव तथा जीता-जागता इतिहास होता है। इसके अंतर्गत नर-नारियों के मनोभावों और मनोवैज्ञानिक झाँकी समाई हुई होती है। लोक साहित्य की परंपरा गंगा की निर्मल धारा की भाँति चली आ रही है, जिसकी सरलता में डुबकी लगाकर हमें विभिन्न पहलुओं और स्थितियों के मध्य पलते तथा पनपते जनजीवन के अनुभवों की मिठास मिलती है। कहा गया है कि 'लोक साहित्य हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।'[३३]

लोक साहित्य को लोक की ऐसी कृति के रूप में स्वीकारा गया है, जिस पर समस्त लोक का समान अधिकार है। लोक साहित्य सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् इन तीनों गुणों से युक्त है। सत्यम् इसलिए कि इसकी कभी मृत्यु नहीं होती, उसने न जाने कितनी बार अपना चोला बदला; परन्तु उसकी मूल आत्मा कभी नष्ट नहीं हुई और न ही उसने अपनी स्वाभाविकता रूपी गुण को छोड़ा।

लोक साहित्य मंगलमय है, शिवम् तत्त्व से युक्त है, क्योंकि इससे लोक का सदैव कल्याण हुआ है। शिवम् से मानव को सन्मार्ग का ज्ञान प्राप्त हुआ है। मानव कर्तव्य पथ की ओर प्रेरित हुआ है। इससे मानव को लोक-व्यवहार की शिक्षा प्राप्त हुई है।

लोक साहित्य का स्वरूप :

लोक साहित्य समग्र लोक के राग-विराग, हर्ष-विषाद, सुख-दुख की सहज अकृत्रिम स्वाभाविक सरस अभिव्यक्ति है। इसलिए यह कहना अतिरंजित नहीं होगा कि लोक साहित्य सर्वव्याप्त है। लोक साहित्य जितना प्रादेशिक है, उससे भी अधिक वह राष्ट्रव्यापी है; और जितना राष्ट्रव्यापी है, उससे भी अधिक वह अंतर्राष्ट्रीय है। यह संपूर्ण मानव जाति की विरासत का साम्य रूप है। राजनीति भले ही विश्व को अनेक देशों को लक्ष्मण रेखा में विभाजित करती है, लेकिन लोक साहित्य शुद्ध राजनीति की इस प्रकार की विभाजन रेखा को स्वीकार नहीं करता। वह समस्त मानव जाति का समान विरासत में भागवत एकता के रूप में विद्यामान है।[३४]

महाकवि बिहारी के द्वारा निम्नलिखित दोहे से उसके आश्रयदाता राजा को भले ही कर्तव्य पथ की प्रेरणा मिली हो -

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

परन्तु इस दोहे से लोक का कल्याण कहाँ? जबकि लोक साहित्य में किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, वरन् समस्त लोक के कल्याण की भावना निहित है। लोक साहित्य की ख्याति, प्रसार एवं लोकप्रियता का आधार शिव ही है।

लोक साहित्य सुन्दरम् तत्त्व से युक्त है। मानव स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय है। प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य देखना उसका स्वभाव है। सुन्दर को ग्रहण करना तथा असुन्दर को त्यागना उसके स्वभाव की विशेषता है। स्वाभाविकता एवं सरसता सुन्दरता के गुण हैं। लोक साहित्य

सुन्दरम् तत्त्व से युक्त है, इसी गुण के फलस्वरूप वह जन-जन के कंठ पर विराजित होता है। अतः लोक साहित्य सुन्दरम् तत्त्व से परिपूर्ण है।

इस प्रकार लोक साहित्य फूलों के गुलदस्ते के समान है, जिसमें भाँति-भाँति के फूल लगे हुए हैं, जिसकी सुगन्ध से समस्त लोक आनन्दित होता है। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि इन फूलों को उगानेवाला माली कौन है? फूलों को गुलदस्ते में सजाने का कार्य लोक मानस के माध्यम से होता है।

लोक साहित्य की विशेषताएँ :

लोक साहित्य की उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर लोक साहित्य की निम्न विशेषताओं को देख सकते हैं।

शिष्ट साहित्य के अंतर्गत आने वाले लगभग तमाम रचनाओं के रचनाकारों के नाम हमें ज्ञात होते हैं। इसके साथ ही हर कृति के निर्माण का समय भी स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। लेकिन जब हम लोक साहित्य को देखते हैं, तो इसके अंतर्गत आने वाली ढेरों रचनाएँ बहुत पहले से लोक में कही-सुनी जाती हैं। लेकिन इन कृतियों के रचनाकार कौन हैं, यह प्रश्न लगभग हर कृति के साथ प्रारंभ से ही जुड़ा रहा है। वैसे देखें, तो बिना सर्जक के कृति का सर्जन संभव ही नहीं है। इस दृष्टि से लोक साहित्य की हर रचना का कोई न कोई रचनाकार अवश्य होगा। लेकिन कुछ ऐसे कारण हैं, जिनके चलते उनका नाम कृति के साथ जुड़ा नहीं है। वैसे लोक साहित्य की रचना लिखित रूप में विकसित न होते हुए भी मौखिक रूप में विकसित होती है। अगर ये लिपिबद्ध होतीं, तो उनके रचनाकार का नाम भी उनके साथ संबद्ध होता। इसके अलावा लोक साहित्य व्यक्ति विशेष की रचना होते हुए भी समूह की रचना बन जाती है। अतः वह किसी विशेष व्यक्ति की कृति न रहकर पूरे जन समूह की रचना हो जाती है। रचयिता के अज्ञात होने की एक वजह यह भी लगती है कि लोक साहित्य का निर्माण यश, कीर्ति, धन आदि की प्राप्ति के लिए नहीं होती। इसके सृजन का यह प्रयोजन

होता तो सर्जक का नाम अवश्य ज्ञात होता। इन्हीं कारणों के चलते इनके निर्माण का काल भी ज्ञात नहीं होता।

मौखिक परंपरा :

लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में मुख्य अंतर यह है कि शिष्ट साहित्य लिपिबद्ध होता है; जबकि लोक साहित्य अलिखित यानी मौखिक रूप में प्राप्त होता है और सुरक्षित रहता है। वैसे आज प्रचुर मात्रा में लोक साहित्य की किताबें छपकर प्रकाशति हो चुकी हैं। लेकिन यह कार्य लोक साहित्य के संग्रहकर्ताओं ने लोक साहित्य की बिखरी हुई रचनाओं को संग्रह करके किया है। उसके निर्माण की मूल प्रक्रिया तो मौखिक ही है।

निरंतर परिवर्तन :

मौखिक होने की वजह से लोक साहित्य में परिवर्तन की संभावना ज्यादा रहती है। शिष्ट साहित्य लिखित है। इसी लिए जो लिखा गया, जितना लिखा गया, वह आगे चलकर वैसा का वैसा रहता है; जबकि लोक साहित्य मौखिक है। इसलिए समय-समय पर इसके कथ्य में बदलाव होते रहते हैं। कथा हो, भाव हो, विचार हो, कोई घटना प्रसंग हो, तो उसमें काट-छाँट हमेशा होती रहती है। मात्र कथ्य में ही नहीं शिल्प में, भाषा-शैली में भी ये लक्षण दिखाई देते हैं। अलग-अलग बोलियों के शब्द, शैलियों की अनेकता, कहने-गाने का लहजा आदि बदलता रहता है।

साहित्यशास्त्र के अनुशासन से रहित :

शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य के बीच जिन बिंदुओं को लेकर अंतर किया जाता है, उनमें एक यह है कि शिष्ट साहित्य में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों एवं नियमों का पूरी तरह से पालन होता है। जैसे रस, अलंकार, छंद, शैली, गुण हर विधा का स्वरूप एक शास्त्रीय अनुशासन से चलता है; जबकि लोक साहित्य में इस तरह साहित्यशास्त्रीय सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से पालन नहीं किया जाता। रस, अलंकार आदि उसमें बहुत सहज रूप में आते

हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने सही कहा है – 'ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का।' एक अन्य जगह वे कहते हैं – 'ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।'

विषय वैविध्य :

लोक साहित्य की विविध विधाओं में वर्ण्य-विषय का वैविध्य मिलता है। लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकोक्तियों, पहेलियों आदि से संबंधित विविध रचनाओं में विषय-वस्तु की भरमार होती है। जन सामान्य के जीवन के विविध पक्ष, समाज, व्यक्ति, सामाजिक, आर्थिक आदि का वर्णन लोक साहित्य में होता है। इसके अलावा प्रकृति, मानवेतर जीव आदि का वर्णन भी इसमें बराबर होता रहता है। ऋतु संबंधी गीतों में प्रकृति-चित्रण होता है। बहुत सारी लोक कथाओं में पशु-पक्षियों का भी जिक्र होता है। देवी-देवता, राजा-महाराजा, भूत-प्रेत अप्सराएँ भी इसमें आती हैं।

लोक साहित्य की परिभाषाओं के आधार पर कई रूप-स्वरूप वैशिष्ट्य दिखाई देते हैं :

१. यह उस लोक का साहित्य है, जो सभ्यताओं की सभाओं से बाहर है।

२. यह मौखिक परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी से प्राप्त है, जिसके रचयिता अज्ञात हैं।

३. लोगों के मनोरंजन के लिए रचा गया साहित्य है।

४. इसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित है।

५. लोक साहित्य जन मानस का प्रतिबिम्बित है।

६. कुछ विद्वान लोक साहित्य के पर्याय के रूप में ग्राम साहित्य, जन साहित्य को भी स्वीकार करते हैं।

७. कुछ लोग लोक साहित्य को जंगली जातियों का साहित्य भी मानते हैं।

८.यह कला तथा संस्कृति में सम्पर्क बनाए रखने का एवं महत्वपूर्ण स्रोत है।

९.यह इतिहास तथा मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।

१०. लोक साहित्य की प्रवृत्ति सरल, सरस एवं अकृत्रिम है।

११. इसमें व्याकरण के नियमों के अनुशासन का कोई बन्धन नहीं है।

१२. यह सामान्य जन के हँसने-रोने का संगीत है।

१३. स्वाभाविकता, सरसता एवं सरलता इसका वैशिष्ट्य है।

१४. यह एक लोक प्रयोगशाला है।

१५. यह प्राचीन साहित्य होते हुए भी अर्वाचीन है।

१६. यह परिवर्तनशील तथा समूह द्वारा स्वीकृत साहित्य है।

१७. यह लोकेच्छा, लोकप्रवृत्ति और लोक सपनों का त्रिकोण है।

१८. यह सामुदायिकता तथा आंचलिकता की नींव है।

१९. लोक साहित्य गेय, श्रेय, श्राव्य साहित्य है।

२०. लोक साहित्य में विशेषतः वक्ता एवं श्रोता ही रहते हैं, पाठक नहीं।

२१. लोक साहित्य गद्य-पद्य मिश्रित चम्पूकाव्य हैं।

इस प्रकार लोक साहित्य बहुविध, बहुरंगी, बहुशैली, बहुजन, बहुहित साहित्य है।[४०]

लोक साहित्य का क्षेत्र :

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक तथा विस्तृत है। साधारण जनता का हँसना, रोना, गाना, खेलना, कूदना सभी लोक साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है। पुत्रोत्पत्ति से लेकर मरणोपरान्त तक माने हुए सोलह संस्कारों के अवसरों पर गाए जाने वाले गीत लोक-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। लोक साहित्य जनता की गोद में पलकर ही बड़ा होता है। एक समय था। ''वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था, जितना जंगल में खिलनेवाला फूल, उतना ही स्वच्छन्द था, जितना की आकाश में विचरनेवाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था,

जितना कि गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।'[४१]

'सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान, जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जन्म-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है, उसी को लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है, जो जनता द्वारा, जनता के लिए लिखा गया है।'[४२]

इस प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। अभिजात साहित्य तो लिपिबद्ध हो चुका है और उसे ही अब तक आदर की दृष्टि से देखा जाता था। विशाल विश्व की परंपरा को देखते हुए यह साहित्य लोक साहित्य की तुलना में अत्यंत ही सीमित है।

लोक साहित्य के लिए ग्राम-साहित्य तथा जन साहित्य शब्द का भी प्रयोग किया गया है। लोक साहित्य और ग्राम साहित्य में अंतर है। जहाँ ग्राम साहित्य केवल ग्रामों का साहित्य है, वहाँ लोक साहित्य ग्रामों के साथ-साथ शहर और नगर का भी साहित्य है। ग्राम रुचि के अनुसार किसी ग्रामवासी द्वारा रचित साहित्य ही 'ग्राम-साहित्य' कहलाता है। अधिकांश ग्राम-साहित्य लोक साहित्य की श्रेणी में नहीं आता। जन साहित्य साधारण का साहित्य लोक साहित्य है। जन साहित्य जन-कल्याण के भाव से ही लिखा जाता है। जन साहित्य का अर्थ कुछ लोग प्रगतिशील साहित्य की क्षेत्रीय विशेषताओं को लेकर चलते हैं। परन्तु लोक साहित्य से अभिहित व्यापक सामान्यता का बोध नहीं कराता। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में : 'लोक साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य देखते हैं कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री-पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है।'

लोक साहित्य की विधाएँ :

शिष्ट साहित्य को जिस प्रकार गद्य और पद्य इन दोनों विभागों में वर्गीकृत किया जाता है, ठीक उसी प्रकार लोक साहित्य को भी गद्य एवं पद्य दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। किन्तु, थोड़ा अन्तर इस रूप में है कि लोक साहित्य में शिष्ट साहित्य की भाँति अनेक विधाएँ मिलती ही नहीं। उदाहरण के लिए जैसे शिष्ट साहित्य में उपन्यास, एकांकी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि अधुनातन गद्य विधाएँ मिलती हैं, वैसे लोक साहित्य में नहीं मिलतीं। लोक साहित्य में तो गद्य के नाम पर या तो लोक कथाओं को मान सकते हैं अथवा प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत आनेवाले मुहावरों को। इनके अतिरिक्त अधिकतर वाङ्मय पद्यबद्ध ही होता है। शिष्ट साहित्य में काव्य के जितने भेद होते हैं, उतने भेद लोक साहित्य में उनके पृथक् नामों अर्थात् लोकगाथा प्रबन्ध के लिए और लोकगीत 'मुक्तक' के लिए सके पुकारा जाता है। एक विशेष बात यह भी है कि परिनिष्ठित साहित्य में प्राप्त 'नाटक गद्य रूप में ही होते हैं, जबकि लोक साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त 'नाट्यरूप' भी पद्यबद्ध होता है। शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत लघु आकारीय काव्यरूपों के लिए पृथक् विधा निर्धारित नहीं है और इसी प्रकार लोकोक्तियाँ और मुहावरे जैसे साहित्य रूप भी। परिनिष्ठित साहित्य के संबंध में इस प्रकार पार्थक्य भेदक विश्लेषण के उपरांत लोक साहित्य की विधाओं का परिचय निम्न रूप में दिया जाता है :

१.लोकगीत

२.लोकगाथा

३.लोकनाट्य

४.लोककथा

५. प्रकीर्ण साहित्य या लोक सुभाषित (प्रकीर्ण)

१.लोकगीत

लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन जीवन में अपनी

प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोकगीत की बात करें तो आदिकाल में जब सामाजिक चेतना का विकास हो रहा था, ऐसे गीतों का जन्म हुआ, जिसका संबंध जीवन से था। धीरे-धीरे मानव प्रकृति पर विजय पाने लगा। अतः उसके गीतों में विजय का उल्लास अभिव्यक्त होने लगा। परंतु मानव प्रकृति के विकराल रूप से परास्त हुआ और उसका सामना करने का साहस उसमें कालांतर में उत्पन्न हुआ। तब उसने संगठन का मूल्य जाना और तब उसे सामाजिकता की आवश्यकता महसूस हुई। यही कारण है कि आदिकाल के गीतों में मानव की सामूहिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। विभिन्न ऋतुओं एवं उत्सवों पर गाए जाने वाले गीतों में मानव के मानव के सामूहिक श्रम, उल्लास एवं संघर्ष की कथाएँ ही हैं।

२. लोकगाथा :

लोकगाथाओं का सामान्य परिचय देते हुए एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार भर में प्राप्त लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में कौन-सा सिद्धांत कार्य करता रहा होगा? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह तो मोटे तौर पर माना जाता है कि यह मानव समाज का आदिम साहित्य रूप है। सामूहिक नृत्य-गीतों के साथ आगे चलकर पौराणिक पात्रों या देवी-देवताओं से संबंधित गाथाएँ भी जुड़ गईं। इस प्रकार नृत्य-गीतों से समाविष्ट पौराणिक इतिवृत्त युक्त स्वरूप ही लोकगाथाओं के निर्माण का मूल रूप कहा जा सकता है। कालांतर में नृत्य, संगीत और गाथा - इन तीनों कलारूपों का स्वतंत्र रूप से पृथकं-पृथकं विकास हुआ। इसी आधार पर ऋग्वेद में प्राप्त ... गाथाओं, संवादों तथा सूक्तों को हम भारत की प्राचीनतम लोकगाथाओं के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

३. लोकनाट्य :

मानव की उत्पत्ति के साथ ही लोकनाट्य के उद्भव की कड़ी जुड़ी हुई है। यह हमारी नाट्य परंपरा का मूल उत्स है। भारत ही नहीं, विश्व भर में नाकनाट्य की परंपरा रही है।

प्रत्येक देश की लोकनाट्य की अपनी परंपरा है। भारतीय लोकनाट्य की परंपरा विभिन्नता में एकता के हित को चरितार्थ करती है। श्री रामनारायण अग्रवाल के अनुसार कहें तो भारत में अनेक लोकनाट्य शैलियाँ प्रचलित हैं। किंतु इनमें विभिन्नता में एकता है। लोकनाट्य की विभिन्न शैलियाँ अपने अंचल विशेष की किसी विशेषता से युक्त होने के कारण प्रसिद्ध रही हैं। इन्हीं लोकनाट्य शैलियों में कुछ धार्मिक लोकनाट्य हैं। कुछ लौकिक सामाजिक तो कुछ लोकनृत्य की प्रधानता लिए हुए हैं, तो कुछ गीत-संगीत की प्रधानता वाले हैं। इन लोकनाट्यों में कुछ ऐसी समानताएँ हैं, जो प्रत्येक लाकनाट्य में देखी जा सकती हैं। सामान्यतः लोकनाट्य परंपरा लिखित नहीं है। अतः विभिन्न शैलियों के उद्‌भव के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ कह पाना संभव नहीं है। मात्र अनुमान तथा प्रचलित मान्यताओं के आधार पर ही इनके उद्‌भव के बारे में कुछ कहा जा सकता है।

४. लोककथा :

लोक में मौखिक परंपरा से चली आने वाली कथाएँ लोककथा कहलाती हैं। लोककथा किसी हृदय-स्पर्शी घटना पर मानव अनुभूति का सच्चा उद्रेक है। इसमें मानव मन की काल्पनिक उड़ान भी है और हृदय की सच्ची अनुभूति भी। शिक्षित वर्ग की अपेक्षा अशिक्षित और रूढ़िवादी वर्ग ने इसे अधिक अपनाया है। युगों से मानव समुदाय ने अपने चारों ओर लोककथा की सुरसरि को बहते देखा है। इसका उद्‌गम और अंत कहाँ है, कोई नहीं जानता। पहली लोककथा किसने बनाई, यह आज तक न कोई बता सका है, न बता सकेगा। परंतु यह अवश्य है कि आख्यायिकाएँ लोककथाओं का परिष्कृत और परिमार्जित रूप हैं।

५. प्रकीर्ण साहित्य :

प्रकीर्ण साहित्य को कुछ लोग सुभाषित भी कहते हैं। ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों पहेलियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभूत ज्ञानराशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन और

विश्लेषण से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें नीति के वचन कहे गए हैं। घाघ और भड्डरी की सूक्तियों में ऋतुज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पाई जाती है। खेती और वर्षा के संबंध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें सहानुभूति की मात्रा अधिक है। घाघ को पशुओं की अच्छी पहचान थी। अच्छे या बुरे पशु की जो पहचान उन्होंने बताई है, वह बिल्कुल सत्य है। पालने के गीत, खेती के गीत उसी कोटि में रखे जा सकते हैं। माताएँ बच्चों को पालने में सुलाकर मधुर गीत गाती हैं, जिन्हें सुनते-सुनते बच्चे सो जाते हैं। बालक कोई खेल खेलते हुए भी गीत गाते रहते हैं।

अन्तिम विधा कोई एक विधा विशेष नहीं है, अपितु स्फुट प्रकार की लघु आकारीय अभिव्यक्ति के विविध रूपों का एक को निर्धारित कर दिया है।